जनसत्ता

घाटी में आतंक

कश्मीर में आम लोगों और प्रवासी मजदूरों पर बढ़ते आतंकी हमले गंभीर चिंता का विषय हैं। ये हमले बता रहे हैं कि सेना, सुरक्षा बल, स्थानीय पुलिस और प्रशासन सब आतंकियों के आगे बौने साबित हो रहे हैं और आतंकियों का नेटवर्क घाटी में दहशत पैदा करने में कामयाब होता जा रहा है। सोमवार को आतंकियों ने एक बार फिर श्रीनगर के व्यस्त बाजार में हथगोले से हमला कर दिया, जिसमें एक व्यक्ति की मौत हो गई और अड़तीस लोग घायल हो गए। कश्मीर में पिछले एक महीने में यह पांचवां आतंकी हमला है। इस दौरान आतंकियों ने हथगोलों से जितने हमले किए हैं उनमें सरकारी दफ्तरों और सुरक्षा बलों को ही निशाना बनाया गया है। इसके अलावा आतंकियों ने प्रवासी कामगारों को भी निशाना बनाना शुरू कर दिया है। ये हमले बता रहे हैं कि आतंकी अपनी रणनीति कामयाब हो रहे हैं और इसका असर नजर आने भी लगा है। लंबे समय से घाटी में काम कर रहे कामगारों ने घाटी छोड़नी शुरू कर दी है। पश्चिम बंगाल के एक सौ अड़तीस मजदूर तो अपने घरों को लौट गए हैं। भले सेना आतंकियों के खिलाफ अभियान चलाने के दावे कर रही हो, लेकिन हकीकत यह है पिछले एक दशक में आतंकियों ने गांव-गांव तक गहरी पैठ बना ली है और उनका खुफिया तंत्र भी काफी मजबूत है। इसीलिए आतंकियों की पहचान कर पाना आसान काम नहीं है।

पिछले तीन महीने में घाटी में जिस तरह से घटनाक्रम बदले हैं, उसमें अभी तक जनजीवन सामान्य नहीं हो पाया है। उम्मीद की जा रही थी कि अनुच्छेद 370 के खात्मे और राज्य को विभाजित कर दो केंद्र शासित प्रदेश बना देने के बाद आतंकियों की कमर टूट जाएगी। लेकिन पिछले एक महीने में घाटी में जिस तरह से ट्रक ड्राइवरों को मारा गया और सुरक्षा बलों पर हमले हुए हैं, उनसे ये दावे हवा हो गए हैं। जाहिर है, आतंकियों की रणनीति अब व्यापारियों और बाहर के लोगों पर हमले की है। इस वक्त घाटी में ज्यादातर धंधे ठप पड़े हैं। कश्मीर में पिछले तीन महीने के दौरान दस हजार करोड़ रुपए से ज्यादा का कारोबारी नुकसान हो चुका है। ले-देकर कुछ उम्मीदें सेब व्यापारियों को बनी थीं और सरकार ने कारोबारियों को पूरी सुरक्षा मुहैया कराने का भरोसा भी दिया था। लेकिन कारोबारी हों या आमजन, सब असुरक्षित ही हैं। बागों में सेब सड़ रहे हैं, लेकिन उन्हें उठाने और मंडियों तक पहुंचाने का पुख्ता इंतजाम नहीं है। दहशतगर्दों ने जिस तरह ट्रक ड्राइवरों को निशाना बनाना शुरू कर दिया है, उससे तो व्यापारियों के लिए और ज्यादा मुश्किलें खड़ी हो गई हैं।

इस समय कश्मीर में सेना और सुरक्षा बलों के सामने सबसे बड़ी चुनौती आतंकियों के खात्मे की है। जब तक गांव-गांव में फैला आतंकियों का नेटवर्क तोड़ा नहीं जाएगा, आतंकियों का सफाया नहीं होगा। हालांकि इन दिनों जो आतंकी हमले हो रहे हैं, वे एक तरह से आतंकी संगठनों की हताशा का नतीजा भी हैं। पिछले दिनों सेना ने जिन आतंकियों को पकड़ा है, उनकी निशानदेही पर कुछ आतंकी ठिकानों को नष्ट भी किया है। आतंकियों ने भूमिगत ठिकाने बना रखे हैं। ऐसे में इनका सुराग तभी मिल पाता है जब कोई आतंकी पकड़ में आता है और वह इनके बारे में जानकारी देता है। घाटी के ज्यादातर जिलों में खेतिहर मजदूर प्रवासी ही हैं जो लंबे समय से वहां काम कर रहे हैं। सवाल यह है कि अगर आतंकी हमलों के खौफ से कामगार घाटी छोड़ने लगेंगे तो कारोबार कैसे चलेगा।

ताक पर सुरक्षा

तेलंगाना में एक महिला अधिकारी को जिंदा जला देने की जैसी घटना सामने आई है, वह दहला देने वाली है। राज्य के अब्दुल्लापुरपेट में तहसीलदार विजया रेड्डी दोपहर को जब अपने दफ्तर में अकेले काम कर रही थीं, उस समय एक व्यक्ति ने उन पर पेट्रोल डाल कर आग लगा दी। उनकी मौके पर ही उनकी मौत हो गई और उन्हें बचाने की कोशिश में उनका कार चालक भी बुरी तरह झुलस गया। बाद में उसकी भी मौत हो गई। खबरों के मुताबिक फिलहाल यही वजह सामने आई है कि आरोपी व्यक्ति संपत्ति विवाद को सुलझाने के क्रम में तहसील कार्यालय में गया था। लेकिन किसी अधिकारी के दफ्तर में घुस कर आसानी से पेट्रोल डाल कर आग लगा देने की घटना से यही साफ होता है कि वहां सुरक्षा-व्यवस्था के स्तर पर किस कदर लापरवाही बरती गई थी। सवाल है कि जब किसी अफसर के खिलाफ इस तरह के अपराध को आसानी से अंजाम दिया जा सकता है तो साधारण लोग कितने सुरक्षित होंगे? क्या आम लोग ऐसे अपराधों की चपेट में आने से इसलिए बच जाते हैं कि वे अपराधियों के निशाने पर नहीं होते?

हैरानी की बात यह है कि तहसील स्तर के कार्यालय में ड्यूटी पर तैनात अफसर के कक्ष में किसी भी काम से जाने वाले व्यक्ति के अलावा कोई सुरक्षाकर्मी या अन्य कर्मचारी नहीं था। गौरतलब है कि जब महिला अधिकारी को आग लगाई गई तो कक्ष को अंदर से बंद कर दिया गया था, जिसे वे किसी तरह खोलने में कामयाब रहीं। बाहर कुछ लोगों को बाद में पता चला और अधिकारी का ड्राइवर और एक अन्य कर्मचारी बचाने की कोशिश में दौड़े। यह किस तरह की व्यवस्था है कि जिस दफ्तर में संपत्ति विवाद जैसी संवेदनशील समस्याओं के हल के लिए आम लोगों का आना-जाना हो, और वहां कोई सुरक्षाकर्मी मौजूद नहीं हो? जबकि हाल के दिनों में आम लोगों के बीच हिंसक और अराजक हो जाने के कई मामले सामने आ चुके हैं और उसमें अधिकारियों को निशाना बनाया गया। करीब चार महीने पहले तेलंगाना के कोमराम भीम आसिफाबाद में एक महिला वन अधिकारी जब अतिक्रमण हटाने गई थीं तो स्थानीय लोगों ने उन पर हमला कर दिया था। इस तरह की घटनाओं के बावजूद अगर किसी दफ्तर में सुरक्षा-व्यवस्था के मामले में लापरवाही बरती जाती है तो इसकी जिम्मेदारी किस पर आनी चाहिए?

विडंबना यह है कि हाल के वर्षों में आम लोगों के बीच प्रतिक्रिया के तौर-तरीके में कई बार विवेक का अभाव देखा जा रहा है। इस बात की पहचान किए जाने की जरूरत है कि आखिर लोगों के व्यवहार में इस तरह की आक्रामकता और धीरज का अभाव क्यों सामने आ रहा है। क्या शासन-तंत्र और उससे जुड़े अधिकारियों और कर्मचारियों के कामकाज का तौर-तरीका ऐसा है जिसमें लोगों की जरूरतों और अपेक्षाओं के मुताबिक कुछ सुधार या बदलाव किए जाने की जरूरत है? या फिर लोगों के बीच प्रशासनिक कामकाज की जटिलताओं को लेकर जागरूकता की कमी है और वे बेवजह ही आक्रामक और हिंसक हो रहे हैं? अगर इस तरह की समस्याएं हैं तो सरकार और शासन को इसमें सुधार करने या नए तौर-तरीके विकसित करने की जरूरत है। लेकिन इससे ज्यादा जरूरी यह है कि हर स्तर पर सुरक्षा-व्यवस्था को चाक-चौबंद किया जाए, ताकि अगर कभी कोई व्यक्ति, समूह या भीड़ किन्हीं स्थितियों में बेलगाम और अराजक होकर हिंसा करने पर उतारू हो तो समय रहते उसे रोका जा सके। वरना जब किसी कार्यालय में एक महिला तहसीलदार को जिंदा जला दिया जा सकता है तो इससे खराब स्थिति और क्या हो सकती है!

कल्पमेधा

कर्म भले ही हमेशा सुख न ला सके, लेकिन कर्म के बिना सुख नहीं मिलता।

– डिजराइली

शहरों का घुटता दम

अतुल कनक

आज से साढ़े तीन-चार दशक पहले तक स्थिति इतनी भयावह नहीं थी। तब सड़कों पर दौड़ने वाले वाहनों की संख्या काफी कम थी। हवा में मौजूद जहर को सोखने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में पेड़ भी थे। लेकिन पिछले कुछ दशकों में स्थितियां बहुत तेजी से बदलीं। सड़कों पर गाड़ियों की भरमार हो गई और विकास की अंधी दौड़ में पेड़ों को अंधाधुंध काटकर हमने उस सहारे को खुद से ही छीन लिया जो न केवल हमें तेज धूप में छाया दिया करता था बल्कि पर्यावरण संरक्षण की आश्वस्ति भी देता था।

राजधानी दिल्ली की हवा में घुले जहर ने एक बार फिर लोगों का जीना मुहाल कर दिया है। राजधानियों की हवा में जहर की बात आमतौर पर मुहावरे में की जाती है, लेकिन दिल्ली और उसके आसपास के इलाकों, शहरों में रहने वाले लोग सचमुच दमघोंटू हवा में सांस लेने को विवश हैं। सड़क पर बेतहाशा दौड़ रहे वाहनों और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के आसपास के इलाके के खेतों में जलाई जाने वाली पराली के धुएं ने सांस लेना दूभर कर दिया है। रही-सही कसर दीपावली पर हुई आतिशबाजी के धूम-धड़ाके ने पूरी कर दी। दिल्ली ही क्या, देश के अधिकांश शहरों की हवा में प्रदूषण की मात्रा दीवाली के दिनों में खतरनाक स्तर पर पहुंच जाती है। उदाहरण के लिए राजस्थान के कोटा शहर को लिया जा सकता है। हर साल करीब दो लाख बच्चे देश के शीर्षस्थ इंजीनियरिंग या मेडिकल कॉलेजों में दाखिले की परीक्षा के लिए कोचिंग लेने के लिए कोटा आते हैं और इन छात्रों की आमद ने कोटा को आर्थिक समृद्धि के नवसोपान सौंपे हैं। यों भी बच्चों को देश का भविष्य कहा जाता है और जिस इलाके में इतनी बड़ी संख्या में बच्चे रहते हों, उस इलाके के पर्यावरण संरक्षण के प्रति सामान्य जन को भी अतिरिक्त रूप से संवेदनशील होना चाहिए। शहर के एक अस्थमा विशेषज्ञ ने दीवाली की रात कोटा की हवा में प्रदूषण की पड़ताल की तो पाया कि वहां की हवा में जहरीले कणों की मात्रा मानक स्तर से सात गुना अधिक है।

पिछले कुछ सालों में हम अपने स्वभाव से ही नहीं, अपने व्यवहार से भी हवा में जहर घोलने के आदी हो चुके हैं। वायु प्रदूषण की भयावहता का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूटीओ) वायु प्रदूषण को 'पब्लिक हेल्थ इमरजंसी' अर्थात जन स्वास्थ्य के लिए आपातकाल कहता है। डब्ल्यूटीओ की एक रिपोर्ट के अनुसार वायु प्रदूषण के कारण हर साल दुनिया में करीब सात करोड़ लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है। बर्मिंघम विश्वविद्यालय ने अपनी एक शोध के दौरान दुनिया में निमोनिया के कारण होने वाली मौतों और वायु प्रदूषण के मध्य सीधा संबंध पाया। लंदन के किंग्स कॉलेज के एक अध्ययन में पाया गया कि वायु प्रदूषण युवाओं में कई मनोविकृतियों को जन्म देता है। सामान्य तौर पर माना जाता है कि वायु प्रदूषण के कारण मनुष्य के फेफड़ों पर बुरा असर पड़ता है, लेकिन वैज्ञानिकों ने पाया है कि वायु प्रदूषण शरीर के हर अंग पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। जहरीली हवाओं का असर फेफड़ों में समा कर समस्त कोशिकाओं को प्रभावित करता है। वायु प्रदूषण के कारण व्यक्ति में तनाव पैदा करने वाले हार्मोनों का स्तर बढ़ जाता है और वह अवसाद का शिकार हो सकता है। बुजुर्गों में समझने की क्षमता में गिरावट संबंधी डिमेंशिया रोग हो जाता है। गर्भवती महिलाओं को गर्भपात जैसी समस्याओं का सामना करना होता है, गर्भस्थ शिशु का जन्म समय से पूर्व ही हो जाता है- जिससे उसका शारीरिक और मानसिक विकास प्रभावित होता है। ब्रोंकाइटिस, अनिद्रा, यकृत के कैंसर, प्रजनन क्षमता में कमी, उच्च रक्तचाप, हृदयरोग जैसे कितने ही रोग वायु प्रदूषण के कारण बढ़ रहे हैं। चीन में किए गए एक अध्ययन में तो यह भी पाया गया कि वायु प्रदूषण बच्चों को गणित और भाषा जैसे विषय सीखने पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

वस्तुतः वायु प्रदूषण अपनी चपेट में आने वाले व्यक्ति के जीवन से इस तरह खिलवाड़ करता है कि स्वास्थ्य की दृष्टि से पीढ़ियां प्रभावित होती हैं। शायद यही कारण है कि हमारे पुरखों ने अपने पर्यावरण के संरक्षण को एक जरूरी मुद्दा माना और वेदों ने लगातार प्रतीकों में पर्यावरण संरक्षण पर जोर दिया। ऋग्वेद में एक स्थान पर 'पृथ्वीः पूः च उर्वी भव' कह कर आह्वान किया गया है कि समस्त पृथ्वी और संपूर्ण परिवेश शुद्ध रहे, तभी जीवन का समग्र विकास हो सकेगा। अथर्ववेद में वायु को प्राण कहा गया है। वेदों के अनुसार वायु पिता के समान पालक, बंधु के समान धारक, पोषक और मित्रवत सुख देने वाली है। कहा तो यह भी गया है कि वायु अमरत्व की निधि है, क्योंकि वह हमें जीवन देती है। लेकिन बदलती हुई जीवन शैली ने हमारी पारंपरिक मान्यताओं से खिलवाड़ किया और मानो प्रदूषण ही हमारे लिए तरक्की का पर्याय बन गया।

इस वर्ष भी जब कुछ संवेदनशील लोगों ने

वातावरण को प्रदूषण से बचाने के लिए दीवाली के पूर्व पटाखों के संयमित उपयोग की बात की, तो कतिपय लोग तरह-तरह के कुतर्क से आतिशबाजी के समर्थन में उतर आए। कुछ लोगों का तो यहां तक कहना था कि दीवाली पर जो आतिशबाजी प्रारंभ से हो रही है, उसके खिलाफ बोलना वस्तुतः एक सुनियोजित साजिश है। ऐसा कुतर्क देने वाले इस ऐतिहासिक तथ्य को भी बिसरा बैठे कि जिन रामचंद्र की अयोध्या वापसी का संदर्भ दीपावली से जोड़ा जाता है, उनका समय ईसा से करीब साढ़े पांच हजार साल पहले का आंका गया है, जबकि आतिशबाजी की शुरुआत तो सदियों बाद हुई। कुछ लोगों ने इस बार यह भी तर्क दिया कि पटाखे से होने वाले धुएं से वातावरण में मौजूद मच्छर मरते हैं, इसलिए पटाखे तो जी भर कर चलाए जाने चाहिए। ऐसा कहने वाले भूल गए कि वातावरण को जहरीला कर देने से केवल मच्छरों पर ही प्रभाव नहीं पड़ता, पीढ़ियां भी प्रतिकूलताओं का सामना करती हैं।

हवा में घुलने वाला जहर उस जहरीले धुएं का परिणाम होता है, जो धुआं वाहनों से- कारखानों से और पटाखों से उत्सर्जित होता है। इस धुएं में शामिल कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर डाईआक्साइड, नाइट्रोजन डाईआक्साइड जैसी गैसें और सीसे के कण वातावरण को जहरीला कर देते हैं। ये जहर बच्चों और बुजुर्गों पर सर्वाधिक प्रभाव डालता है। सर्दी के दिनों में वातावरण की आर्द्रता के कारण जहरीले कण जमीन से कुछ ऊपर ही एक ऐसा आवरण बना लेते हैं कि हवा बहुत बोझिल हो जाती है। दीवाली के दिनों में चूंकि आतिशबाजी के कारण हवा में नुकसानदायक कहे जाने वाले कणों की मात्रा बहुत बढ़ जाती है और वही समय ऋतु परिवर्तन का भी होता है, इसलिए लोगों को ज्यादा परेशानी होती है।

आज से साढ़े तीन-चार दशक पहले तक स्थिति इतनी भयावह नहीं थी। तब सड़कों पर दौड़ने वाले वाहनों की संख्या काफी कम थी। हवा में मौजूद जहर को सोखने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में पेड़ भी थे। लेकिन पिछले कुछ दशकों में स्थितियां बहुत तेजी से बदलीं। सड़कों पर गाड़ियों की भरमार हो गई और विकास की अंधी दौड़ में पेड़ों को अंधाधुंध काटकर हमने उस सहारे को खुद से ही छीन लिया जो न केवल हमें तेज धूप में छाया दिया करता था बल्कि पर्यावरण संरक्षण की आश्वस्ति भी देता था।

अमेरिका के शिकागो विश्वविद्यालय में भारत में पर्यावरण के बुरे प्रभावों का अध्ययन किया तो चौंकाने वाला तथ्य यह सामने आया कि गंगा के मैदानी इलाकों में रहने वालों की औसत उम्र में वायु प्रदूषण के कारण साढ़े तीन से लेकर सात वर्ष तक की कमी हो रही है। स्थिति यह है कि 1998 से 2016 के बीच इस इलाके में प्रदूषण सत्तर फीसद से भी अधिक बढ़ गया है, जबकि देश की चालीस फीसद आबादी भी इसी इलाके में रहती है। ऐसे में आने वाले समय में वायु प्रदूषण के कारण पनपने वाली बीमारियों से ग्रसित लोगों की संख्या में कितनी वृद्धि होगी, इसका अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन वायु प्रदूषण को 'पब्लिक हेल्थ इमरजंसी' यों ही नहीं कहता।

हंसी के संदर्भ

एकता कानूनगो बक्षी

मुस्कुराना, हंसना और ठहाके लगाना हम सभी अपने आप ही सीख जाते हैं। बाल्यावस्था में जब चलना, बोलना भी हमें नहीं आता, तब भी हम खिलखिला कर हंसते हैं। चीजों को बिना जाने-समझे भी हम हंसते हैं। जैसे-जैसे हमारी समझ का दायरा बढ़ता जाता है, हम चीजों, परिस्थितियों को देख-समझ कर शिष्टाचार का ध्यान रखते हुए ही ठहाके लगाते हैं। हम जानने लगते हैं कि कब हमें हंसना या मुस्कुराना है। एक दूसरे का अभिवादन करते हुए भी खिलखिला कर हंसते नहीं हैं, केवल मुस्कुराते हैं। कभी-कभी बात समझ में नहीं आने पर असमंजस की स्थिति को सिर्फ मुस्कुरा कर संभाल लेते हैं। कभी गलत समय अनायास आई हंसी को मुंह दबा कर छिपा लेने का प्रयास भी करते हैं। कई स्वास्थ्य विशेषज्ञ और योगाचार्यों का मानना है कि मुस्कुराहट या हंसी जहां हमारे तन-मन को खूबसूरत बनाती है, हमारे मानसिक और हृदय के स्वास्थ्य के लिए भी यह बहुत अधिक लाभदायक होती है।

हंसना, मुस्कुराना, खुश रहना दुनिया को और अधिक सुंदर और प्रफुल्लित बनाए रखने की एक बहुत कारगर युक्ति मानी जा सकती है। प्रसन्न बने रहने के महत्त्व को अनेक चिंतकों, विद्वानों, समाजशास्त्रियों और कलाकारों ने बहुत गंभीरता से लिया है। उन्होंने ऐसे उपाय किए, रुचिकर साधन विकसित कर ऐसे रास्ते सुझाए जो लोगों के जीवन में हंसी और प्रफुल्ल रहने के अवसर पैदा कर सकें। इसके साथ-साथ अनेक कॉमेडी फिल्में, नाटक, टीवी सीरियल बनाए गए हैं, जिन्होंने दर्शकों को प्रफुल्लित करने का काम किया है। लेकिन कई बार इनकी विषय-वस्तु तो अच्छी, संदेशपरक और स्तरीय होती है, पर उनका प्रस्तुतिकरण बहुत खराब और हास्यास्पद हो जाता है।

दुनिया मेरे आगे

होना तो यह चाहिए कि रोजमर्रा की पारिवारिक समस्याओं और परेशानियों को भी कुछ इस तरह प्रस्तुत किया गया हो कि उससे कठिनाइयों का बोझ दर्शकों के निजी जीवन के संघर्षों पर कुछ हल्का भी हो और उसे निरंतर संघर्ष की हिम्मत मिल सके। जब भी इस हंसी-खुशी के लिए रोचक, लेकिन परिपक्व और गंभीर प्रयास हुए हैं, उनकी सार्थकता प्रमाणित हुई है। कुछ प्रस्तुतियों में चाहे वे नाटक हों या फिल्में या कोई टीवी धारावाहिक, उनमें बड़े प्रेरक तरीके से निराश व्यक्ति में उमंग और उत्साह भरने का काम किया गया है। मनुष्य की शारीरिक या मानसिक कमजोरी को भी कुछ इस तरह प्रस्तुत किया गया कि कैसे इतनी कमजोरियों के बाद भी फिल्म का नायक या नायिका हालात से लड़ते हुए सफलता के शीर्ष पर पहुंच जाते हैं। ऐसी हास्य या कॉमेडी प्रस्तुतियों में महिलाओं और बुजुर्गों को आदर के साथ-साथ बच्चों पर स्नेह के अलावा शिष्टाचार का भी बहुत ध्यान रखा गया होता है।

जहां तक भाषा का सवाल है, शुरुआती हास्य प्रस्तुतियां बिना आवाज के मुख मुद्रा और हावभाव से ही अभिनीत की जाती थीं। जिनमें संवाद होते थे, वे भी काफी चिंतन के बाद ऐसे बनाए जाते थे कि गंभीर बातें भी मजाकिया ढंग से दर्शकों तक पहुंच जाती थीं। इस तरह की प्रस्तुतियों और फिल्मों के बारे में जब सोचते हैं तो हमारे मन मस्तिष्क में चार्ली चैपलिन, राज कपूर, भगवान दादा, जानी वॉकर की कुछ फिल्मों के दृश्य सामने आ जाते हैं। सिनेमा के अलावा प्रिंट मीडिया भी इस मामले में पीछे नहीं रहा। कार्टून कॉर्नर गंभीर मुद्दों को मजाकिया ढंग से अखबारों में प्रस्तुत करता रहा है। वहीं व्यंग्य विधा भी लोगों को पूरे लेख में गुदगुदाती रहती है और अंत में एक पीड़ा या टीस छोड़ मन को उद्वेलित कर देती है। ऐसे कई नाम अनायास याद आ जाते हैं। ख्यात व्यंग्यकार शरद जोशी, केपी सक्सेना, आरके लक्ष्मण, आबिद सुरती सहित अनेक नाम लिए जा सकते हैं, जिन्होंने हास्य, व्यंग्य में शालीनता और गरिमा सदैव बनाए रखी।

हास्य-व्यंग्य की प्रस्तुतियों मे खासतौर पर 'स्टैंड-अप कॉमेडी शो' में इन दिनों वह मेहनत कम दिखती है या शायद हम मौका ही नहीं देते हैं। किसी ओछी टिप्पणी और अभद्र व्यवहार पर भी हम ठहाके लगाने लगे हैं। सोशल मीडिया पर पूरे समय घटिया चुटकुले फॉरवर्ड होते रहते हैं, हम सब एक दूसरे से साझा कर खिलखिलाते हैं। दूसरों की गलतियों पर हंसते हैं। इतिहास के महान नायकों पर लतीफे, जुमले कसते हैं और फिर ठहाके लगा कर मखौल उड़ाते हैं। लोगों के नाम के आगे-पीछे अभद्र विशेषण लगा देते हैं या फिर उनका पूरा नाम ही बदल डालते हैं। व्यक्ति की प्रकृति प्रदत्त किसी मजबूरी और कमजोरियों पर हंसते हैं। स्त्रियों पर घटिया चुटकुले बना कर हंसते हैं। भाषा के पतन पर हंसते हैं।

आखिर घटियापन पर हम इतना क्यों हंस लेते हैं? कहीं अंदर ही अंदर हम खोखले तो नहीं होते जा रहे? जरूरत है उस हंसी की, जिसकी नींव गंभीरता पर बनी हो, जो हमें लंबे समय तक प्रसन्नचित्त रख सके, खुशहाली फैलाए। जिसे हर मजहब, हर उम्र, हर वर्ग का व्यक्ति खिल उठे। हंसी-खुशी तो संक्रामक होती है। जो खुशी किसी और को दुखी करे, वह हंसी और ठहाके समाज और संस्कृति के लिए घातक हो सकते हैं। अगली बार हम जब भी किसी बात पर हंस रहे हों एक बार जरूर सोच लेना चाहिए कि क्या हमारी हंसी किसी विचारहीनता की और तो नहीं ले जा रही हमें!

कुर्सी का मोह

महाराष्ट्र में भाजपा और शिवसेना के बीच चल रही रार थमती नजर नहीं आ रही है। यह दोनों दलों की महत्त्वाकांक्षा ही है कि चुनाव नतीजे आए हफ्ते भर से ज्यादा हो चुका है, लेकिन अभी तक मुख्यमंत्री तय नहीं हो पाया है। सत्ता लोलुपता का ये जीता-जागता उदाहरण है। दोनों दलों ने ठान लिया है कि कुर्सी के लिए अगर जनता पिस रही है तो पिसने दिया जाए, हमारी कुर्सी बची रहनी चाहिए। ढाई-ढाई साल के फार्मूले का नियम लेकर शिवसेना ने अपने ही पैर पर कुल्हाड़ी मारने का काम किया है, क्योंकि चुनाव से पहले उसने जनता से वादा किया था कि हम सिर्फ देश और जनता के लिए काम करेंगे। लेकिन अब शिवसेना ने मीडिया और राजनीतिक विश्लेषकों को सोचने पर मजबूर कर दिया है कि क्या वाकई ये उन्हीं बाला साहेब ठाकरे की शिवसेना पार्टी है जिन्होंने अपने खून-पसीने से इसे खड़ा किया था और कहा था कि हम कभी कुर्सी का मोह नही करेंगे। हमारे साथ गठबंधन वाली पार्टी को हमारी शर्तें भी माननी पड़ेंगी। लेकिन आज की शिवसेना का तो रंग ही कुछ और है।

आज इन दोनों पार्टियों का जनाधार एक जैसा ही है। शिवसेना को डर सता रहा है कि कहीं भाजपा उसके वोट बैंक को निगल न ले। शिवसेना को लगता है कि वह भाजपा के खिलाफ जितनी मुखर होगी, उसका वोट बैंक उतना ही बढ़ेगा। शिवसेना अगर शरद पवार से हाथ मिलाती है तो वह अपनी हिंदुत्व वाली छवि खो देगी और जनता की नजरों में गिर जाएगी।

● *ब्रजेश सैनी, फतेहपुर (उप्र)*

डाटा की सुरक्षा

दुनिया भर में सोशल नेटवर्किंग साइट के प्रसार ने लोगों को अभिव्यक्ति का जो मंच दिया है, उसका निरंतर दुरुपयोग हो रहा है। उपयोगकर्ताओं के डाटा लीक होने और निजी अधिकार हनन की तेजी से बढ़ती घटनाएं सरकारों, समाज, जांच एजेंसियों सभी के लिए चिंता का विषय बनती जा रही हैं। सोशल नेटवर्किंग साइटों के व्यावसायीकरण, जासूसी और अनियंत्रित व्यक्तिगत निंदा अभियान से भारत भी अछूता नहीं रहा है। सरकार के स्तर पर चिंतन होने लगा है कि किस तरह इन सोशल नेटवर्किंग कंपनियों को नियमन के द्वारा नियंत्रित किया जाए। सुप्रीम कोर्ट भी इस संदर्भ में कई बार अपनी चिंता जाहिर कर चुका है। सोशल नेटवर्किंग साइटों का इस्तेमाल दरअसल कुछ लोग सरकार, व्यक्तियों और संस्थानों को अपनी पसंद और नापसंद के आधार पर बेलगाम आलोचना के लिए भी करने लगे हैं जिसमें कई बार बिना तथ्यों की तह में गए किसी भी मुद्दे पर ट्रोल या गालीगलौज तक की जाने लगी है। इससे सार्वजनिक जीवन में व्यक्ति की साख प्रभावित होती है। इससे व्यक्ति के निजता के अधिकार का भी हनन होता है। हाल में सुप्रीम कोर्ट ने छत्तीसगढ़ के फोन टैपिंग मामले में टिप्पणी करते हुए कहा भी है कि किसी के लिए निजता बची कहां है।

जाहिर है, निजता हनन को लेकर सुप्रीम कोर्ट लगातार चिंता व्यक्त कर रहा है, लेकिन सोशल नेटवर्किंग साइटें इससे बेपरवाह नजर आती हैं। सर्वोच्च अदालत ने 2017 में ही कह दिया था कि निजता मूल अधिकार है। निजता की रक्षा और डेटा संरक्षण को लेकर सरकार ने 2017 में एक विशेषज्ञ समिति भी बनाई थी। इस समिति ने एक साल के भीतर अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंप दी थी। इस कमेटी की प्रमुख सिफारिशों में निजी डेटा जमा करने और उसकी प्रोसेसिंग पर प्रतिबंध, राज्य के कामकाज के लिए निजी डेटा की प्रोसेसिंग, भुलाए जाने के अधिकार, डाटा लोकलाइजेशन, संवेदनशील निजी डेटा की प्रोसेसिंग के लिए स्पष्ट सहमति, डाटा संरक्षण प्राधिकार, आधार और आरटीआइ एक्ट में संशोधन जैसे मुद्दों पर विचार करते हुए सुझाव दिए हैं। अब यह सरकार पर निर्भर करता है कि वह डाटा जैसे संवेदनशील मुद्दे पर इस समिति की सिफारिशों को कानून की शक्ल देकर कितनी जल्द निजता के अधिकार को कानूनी जामा पहनाती है।

● *बिजेंद्र कुमार, आंबेडकर कॉलेज, दिल्ली विवि*

वर्दी पर दाग

एक कानून का पालन करने वाले हैं और एक उसका पालन कराने वाले। कानून का पालन कराने वाले ही यदि कानून हाथ में लेकर सड़क पर कानून का पालन करने वालों के साथ मारपीट करें और उत्पात मचाने लगें, तब कौनसी व्यवस्था बिगड़ी अव्यवस्था को सुधारेगी? दोनों ही पक्ष शिक्षित, समझदार, सभ्य, संविधान को जानने वाले और उसका पालन करने व कराने वाले हैं, तब तो टकराव को टालने के लिए बेहतर तरीके अपना सकते हैं। मारपीट, हड़ताल, प्रदर्शन वर्दी वालों को शोभा नहीं देता। अगर वे समझदारी से काम नहीं लेते हैं तब आम और वर्दी वालों में अंतर ही नहीं रह जाएगा। काले कोट और खाकी वर्दी वाले दोनों अपनी वर्दी के महत्त्व को समझें और अपने उच्च आदर्श का परिचय दें।

● *शकुंतला महेश नेनावा, इंदौर*

जनविरोधी कदम

बीसवीं सदी के शुरुआती वर्षों में अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन ने काफी मश्क्कत के बाद मजदूरों के लिए आठ घंटे प्रतिदिन और अड़तालीस घंटे प्रति सप्ताह कार्य करने का समय निर्धारित करवाया था। मगर अब भारत सरकार का यह कदम कि कामगारों का समय आठ से बढ़ा कर नौ घंटे किया जाएगा, हैरत में डालने वाला है। यह कामगारों के और शोषण के फरमान से कम नहीं है। सरकार का यह फैसला सीधे-सीधे व्यापारियों और उद्योगपतियों को फायदा पहुंचाने वाला है। दुनिया भर में जब 1925 से ही हफ्ते में पांच दिन कार्यदिवस चलन शुरू हो चुका है, तो ऐसे कामगार विरोधी कदम कोई जनविरोधी सरकार ही उठा सकती है। जबकि कई देश तो अब पांच दिन के हफ्ते को घटाकर चार दिन का कर चुके हैं। नीदरलैंड में कार्य दिवस आधिकारिक रूप से चार दिन कर दिया गया है। इससे कामगार पहले की तुलना में चालीस फीसद तक ज्यादा उत्पादन कर रहे हैं। जापान में भी चार दिन के कामकाजी हफ्ते के अच्छे नतीजे सामने आए हैं। भारत में तो इसे बिडंबना ही कही जाएगा कि सरकार काम के घंटे तो बढ़ा रही है, लेकिन न्यूनतम मजदूरी बढ़ाने में उसकी कोई दिलचस्पी नहीं है।

● *जंग बहादुर सिंह, जमशेदपुर*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com